Shikshan Sanshodhan : Journal of Arts, Humanities and Social Sciences ISSN(o): 2581-6241
Monthly, Peer-Reviewed, Refereed, Indexed Journal Impact Factor: 6.471
Volume - 6, Issue - 2, February - 2023 Publication Date: 20/02/2023

DOIs:10.2018/SS/202302002 --:-- Research Paper / Article

स्वाधीनता पश्चात संवैधानिक न्यायालयों की शक्तियां

श्री आशुतोष राय
सहायक प्राध्यापक, शा.विधि महाविद्यालय, दतिया, (म.प्र.)
Email - ashutoshrai145@gmail.com,

सारांश:- स्वाधीनता पूर्व भारत में जहाँ हम भारतीयों की दशा दयनीय थी वही हमारे न्यायालयों की शक्तियां व अधिकारिता भी दयनीयरही | न्यायालय में न्यायधीश अधिकतर या लगभग सभी ब्रिटिश ही होते थे जहाँ ब्रिटिश सरकार बिना सामाजिक तथ्यों, भारतीयपरिस्थिति को जाने, जिन विधियों का निर्माण करती, न्यायधीश द्वारा उसी विधि को उसी रूप में लागू करा दिया जाता था | इसी प्रकारस्वाधीनता पूर्व भारत में हम भारतीयों के साथ ब्रिटिश सरकार, ब्रिटिश संसद, साथ ही साथ तत्कालीन न्यायालय इन सभी के द्वारा शोषणकिया जाता रहा उस समय न्यायालय केवल अपने अधिकारिता में ही कार्य करता था वह अपनी अधिकारिता से बाहर जाकर कुछ भी कार्यनही कर सकते थे | ये प्रस्थिति स्वाधीनता के बाद भी कुछ वर्षो तक बनी रही लेकिन धीरे-धीरे न्यायालयों की अपनी सोच व शक्ति काआभास हुआ और अपनी अधिकारिता से बाहर जाकर न्याय की प्राप्ति के लिए कार्य करना शुरू किया तब न्यायालय की इस कार्य पद्धति कोन्यायिक सक्रियता का नाम दिया गया और आज यह न्यायिक सक्रियता अतिसक्रियता के श्रेणी में आ गया हैं | हम इस आलेख में न्यायिकसक्रियता के विस्तृत रूपों की चर्चा करते हुए देखंगे कि कैसे सक्रियता अतिसक्रियता में परिवर्तित हो जाती हैं |

मुख्य बिंदु:- न्यायिक सक्रियता, अधिकारिता, प्राधिकारी, रिट, संवैधानिक मूल्य |

1. न्यायिक सक्रियता का परिचय :

1. जब विधायिका बदलते समय के अनुरूप आवश्यक कानून बनाने में विफल हो जाती हैं और सरकारी एंजेसीया अपने प्रशासनिक कार्यो को ईमानदारी से करने में बुरी तरह विफल हो जाती हैं तो इससे संवैधानिक मूल्यों और लोकतंत्र में नागरिको के विश्वास की हानि होती हैं | ऐसे परिदृश्य में न्यायपालिका आमतौर पर विधायिका और न्यायपालिका के निर्धारित क्षेत्रों में कदम रखती हैं |
2. यदि सरकार या किसी अन्य तीसरे पक्ष द्वारा लोगों के मौलिक अधिकारों का हनन किया जाता हैं तो न्यायधीश नागरिकों की बेहतरी के लिए सहायता का कार्य अपने ऊपर ले लेती हैं |
3. न्यायपालिका का सबसे बड़ा औजार लोगों का विश्वास हैं वह इस विश्वास को बनाये रखने के लिए निर्वचन किया करती हैं ताकि विवाद में संतुलन बना रहें |

2. साहित्य समीक्षा :-

इस आलेख में शामिल तथ्यों केस व अन्य सामग्री को संदर्भित पुस्तकों में कही - कही उल्लेखित किया गया हैं लेकिन इस आलेख में विभिन्न जगहों में शामिल केस लॉ तथ्यों को एकत्र कर लोगों को आज के समय में न्यायालय की बढती शक्तियों को बताने की आवश्यकता हैं | इसी आवश्यकता को ध्यान में रख कर संदर्भित पुस्तकों व विभिन्न ऑनलाइन वेबसाइट का अवलोकन कर उसमे से ज्ञानवर्धक बातो को अपने शब्दों में इस आलेख में निरुपित किया गया हैं चाहे वह जे.एन.पांडे की पुस्तक हो या किसी और की |

3. शोध प्राविधि:- 1. विधि पुस्तकालय में उपलब्ध विधि पुस्तकों पत्रिकाओं का अन्वेषण |
2. वेबसाइट, ब्लॉग पर उपलब्ध सामग्री का अन्वेषण |
का अध्ययन कर न्यायालय की वर्तमान समय में बढती शक्तियों को उल्लेखित करना हैं |

4. न्यायिक सक्रियता का अर्थ:- न्यायिक सक्रियता शब्द का प्रयोग प्राय: न्यायिक संयम (Judicial Restraint) के विपरीत आशय में किया जाता हैं | न्यायिक सक्रियता एक बदलते समाज में न्यायिक दृष्टिकोण की एक गतिशील प्रक्रिया हैं | आर्थर स्लेसिंगर जूनियर ने जनवरी 1947 फार्च्यून पत्रिका में प्रकाशित “The Supreme Court : 1947 ” शीर्षक में न्यायिक सक्रियता शब्द का प्रयोग किया था |

ब्लैक लॉ डिक्शनरी के अनुसार, न्यायिक सक्रियता एक न्यायिक दर्शन हैं जो न्यायधीशों को पारंपरिक पूर्व निर्णयों से हटकर प्रगतिशील और नई सामाजिक नीतियों के पक्ष में आगे बढने को प्रेरित करती हैं |

न्यायिक सक्रियता की उत्पति व विकास मुख्य न्यायधीश हेवर्ट ने कहा कि "यह मौलिक रूप से महत्वपूर्ण हैं कि न्याय न केवल किया जाए बल्कि स्पष्ट रूप से व निर्विवाद रूप से दिखना चाहिए" | इसके लिए न्यायालय को न्यायिक सक्रियता की जरुरत पड़ेगी और इसके लिए न्यायधीश न्यायिक एजेंट के रूप में कार्य कर लोगों को न्याय प्रदान करते हैं |

तत्कालीन यूनाइटेड किंगडम में स्टुअर्ट के शासनकाल (1603-1680) में न्यायिक समीक्षा की स्थापना 1610 में **जस्टिस कोक ने थामस बोनहम बनाम कॉलेज ऑफ़ फिजिसियन** में की न्यायधीश ने कहा कि संसद द्वारा पारित कोई भी कानून जो सामान्य कानून या तर्क के खिलाफ हैं उसकी समीक्षा की जा सकती हैं और उसे शून्य भी घोषित किया जा सकता हैं |

न्यायिक सक्रियता की उत्पति 1803 में अमेरिकन सर्वोच्च न्यायालय ने **मैडवरी बनाम मैडिसन** के मामले में न्यायिक समीक्षा से उत्पन्न माना जिसका तात्पर्य न्यायालय अपने मामले को पुन: देख कर अपने पहले हुई त्रुटी को दूर कर सकता हैं ,और इस प्रकार वह इससे अपनी न्यायिक सक्रियता की शक्ति को प्राप्त करती हैं | मामले में पहली बार सर्वोच्च न्यायालय ने कानून के एक हिस्से को असंवैधानिक घोषित किया क्योकिं वह प्रावधान संविधान के उच्च आदर्शो को तोड़ता था | बाद में यही न्यायालय की कार्य की प्रकृति न्यायिक सक्रियता के रूप में
उभरी | यह सर्वविदित हैं कि जब किसी विषय को लिख दिया जाता हैं तो उसमे निर्वचन करने की जगह कम रहती हैं और जब विषय अलिखित रहती हैं तो उसमे निर्वचन के ज्यादा स्पेस होते हैं |

5. न्यायिक सक्रियता की परिभाषा :- वास्तव में न्यायिक सक्रियता की परिभाषा इतनी व्यापक हैं कि इसकी कोई सटीक परिभाषा नही दी जा सकती हैं क्योंकि प्रत्येक विधिवेत्ता इसे अपनी अपनी तरह से परिभाषित करते हैं | न्यायिक सक्रियता के समर्थकों का कहना हैं की यह न्यायिक समीक्षा का ही एक उचित रूप हैं |

न्यायिक सक्रियता का सामान्यतया प्रयोग संविधान की सीमाओं के भीतर लोकतान्त्रिक शक्ति का प्रयोग करके कार्यकारी गलती को ठीक करना हैं | न्यायिक सक्रियता का प्रयोग सरकार के दो अंगो विधायिका व कार्यपालिका द्वारा की गई गलतियों को ठीक करने के लिए किया जाता हैं | अर्थात न्यायपालिका इन दोनों अंगो के बीच समन्वय स्थापित करने का कार्य करती हैं | इस प्रकार यह कहा जा सकता हैं कि न्यायिक सक्रियता का प्रादुर्भाव न्यायिक पुनरावोलाकन ही हैं | मूल अधिकारों के परिप्रेक्ष्य में न्यायिक समीक्षा की शक्ति उच्च न्यायालय व सर्वोच्च न्यायालय के पास ही हैं प्रारंभ में न्यायालय केवल विधिक प्रावधानों का निर्वचन करने का कार्य करते रहें इसके कई उदाहरण देखे जा सकते हैं |

- **ए.के.गोपालन बनाम मद्रास राज्य A.I.R. 1950 S.C.** माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने "विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया" शब्द जो अनु. 21 में वर्णित हैं शाब्दिक निर्वचन करते हुए कहा कि यदि किसी व्यक्ति का निरोध, निवारक निरोध अधिनयम के तहत किया गया हैं, जो विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया से ही बनी हैं तो इससे किसी व्यक्ति के अनु. 13,19,21,22, में प्रद्दत मूल अधिकार का उल्लघंन नही होता हैं |
- **शंकरी प्रसाद बनाम भारत संघ A.I.R.1951 S.C.** के वाद में पहले संविधान संशोधन अधिनियम,1951 को चुनौती दी गई जिसमे इस बात का उल्लेख था कि संसद भाग -3 सहित संविधान के किसी प्रावधान में संशोधन कर सकती हैं | माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने भी विधि के प्रावधानों का साधारण निर्वचन करते हुए संसद की इस शक्ति की पुष्टि की | अर्थात संसद संविधान के किसी प्रावधान में संशोधन कर सकती हैं |
- **ए.डी.एम्.जबलपुर बनाम शिवाकांत शुक्ला A.I.R.1976 S.C.** के मामले में सरकार द्वारा कई व्यक्तियों को आंतरिक सुरक्षा अधिनियम (MISA) के तहत बिना किसी मुकदमे के गिरफ्तार किया गया | जिस पर प्रत्यर्थी द्वारा यह याचिका दायर की गई उच्च न्यायालय ने उनके पक्ष में निर्णय देते हुए कहा कि प्रत्यर्थी ऐसे गिरफ्तारी के विरुद्ध कार्यवाही करा सकते हैं परन्तु सरकार ने इस निर्णय के विरुद्ध सर्वोच्च न्यायालय में अपील की और पांच जजों की बेंच ने बहुमत से कहा कि आपातकाल में कोई व्यक्ति अनु. 226 के तहत उच्च न्यायालय में नही जा सकता हैं | परन्तु **न्यायमूर्ति खन्ना** ने अपना विपरीत मत देते हुए कहा कि इस दौरान व्यक्ति को न्यायालय में जाने का अधिकार होता हैं परन्तु वह स्थगित रहता हैं और आपातकाल हटते ही वह अपनी व्यक्तिगत स्वत्रंत्राओं को लागू करा सकता हैं |
- **एल.चन्द्र कुमार बनाम भारत संघ A.I.R.1997S.C.1125** के मामलें में उच्चतम न्यायालय के पांच न्यायाधीशों की संविधान पीठ ने कहा कि अनु.32 के अधीन विधायी कार्यों पर उच्चतम न्यायालय में निहित न्यायिक पुनरावोलाक्न की शक्ति संविधान का आधारभूत ढांचा हैं अत: इसे संविधानिक संशोधन द्वारा भी समाप्त नही किया जा सकता हैं |
- **एस.पी.गुप्ता बनाम भारत संघ A.I.R.1982S.C.149(**न्यायाधीश स्थानातंरण का मामला)में उच्चतम न्यायालय के सात न्यायाधीशों की पीठ ने इस विषय से सम्बन्धित विधि को पूर्णरूपेण सुनिश्चित कर दिया हैं और सर्वसम्मति से यह निर्णय दिया हैं कि अधिवक्ता संघो को अनु. 32 के अधीन रिट अधिकारिता के द्वारा उनके स्थानान्तरण को चुनौती देने का हक़ हैं

क्योकि न्यायपालिका की स्वतंत्रता में उनका "पर्याप्त हित" हैं | मुख्य न्यायमूर्ति श्री पी.एन. भगवती ने निर्णय सुनाते हुए कहा कि "यदि कोई व्यक्ति या समाज का वर्ग, जिसको विधिक क्षति पहुचाई गई हैं या विधिक अधिकारों का अतिक्रमण हुआ हैं, अपनी निर्धनता अथवा किसी अन्य कारण से अपने संवैधानिक या विधिक अधिकारों के सरंक्षण के लिए न्यायालय में जाने में असमर्थ हैं तो समाज का कोई अन्य व्यक्ति या संघ अनु. 32 के तहत आवेदन दे सकते हैं उन परिस्थितियों में कोई भी व्यक्ति पत्र लिखकर उपचार की मांग कर सकता हैं और उसे रिट पिटीशन की तकनीकी बारीकी का पालन करना आवश्यक नही हैं |"

इस प्रकार हमें कई ऐसे उद्धरण देखने को मिल जायेंगे जो यह दर्शित करते हैं कि आज़ादके कुछ वर्षो तक न्यायालयों ने शांतिपूर्ण तरीके से शाब्दिक निर्वचन करते हुए न्याय प्रदान करने का काम किया जो कानून में लिखी हैं उसको उसी रूप में लागू कर दिया जाता रहा| न्यायालय लिखी गई प्रावधानों से हट कर कोई भी निर्णय नही देते थे भले वह कानून क्यों न नैसर्गिक नियमों का उल्लंघन करता हो इसका उदहारण **ए.के.गोपालन** का मामला रहा |

अनु. 32(2) की भाषा अत्यंत व्यापक हैं और उच्चतम न्यायालय को नागरिको को न्याय प्रदान करने के उद्देश्य से कोई भी रिट,आदेश,निर्देश या अन्य समुचित आदेश या रिट जिसके अंतर्गत बंदी प्रत्यक्षीकरण, परमादेश, प्रतिषेध, अधिकार पृच्छा, उत्प्रेषण, और इसी प्रकार के अन्य रिट भी आते हैं, जारी करने की शक्ति प्रदान करता हैं | अनु. 32 (2) उच्चतम न्यायालय को नागरिको को मूल अधिकारों का "सजग प्रहरी" बना देता हैं इसके अंतर्गत अब न्यायालय ने लोकहित वाद की अवधारणा की स्थापना की हैं जिसके माध्यम से कोई भी व्यक्ति या संस्था किसी ऐसे व्यक्ति के मूल अधिकारों की रक्षा के लिए जो निर्धनता या किसी कारणवश न्यायालय जाने में असमर्थ हैं, न्यायालय में याचिका फाइल कर सकता हैं | यही नही अब न्यायालय जनहित के अनेक मामलों में जो कार्यपालिका और विधानमंडल के कार्य क्षेत्र में हैं हस्तक्षेप कर रहा हैं और सरकार और प्राधिकारियों को संविधान और अन्य कानूनों के तहत उनके कर्तव्यों के पालन करने के लिए विवश कर रहा हैं उच्चतम न्यायालय के इसी कार्य को न्यायिक सक्रियता कहा जाता हैं | यह इसीलिए संभव हुआ हैं क्योंकि लोकहित वाद के माध्यम से अधिक से अधिक नागरिक मूल अधिकारों के उल्लघंन के विरुद्ध तथा कानून द्वारा अधिरोपित कर्तव्यों के पालन कराने के लिए न्यायालय में याचिका फाइल कर सकता हैं |

उच्चतम न्यायालय ने अनुभव किया हैं कि एक लोक कल्याणकारी राज्य में उच्चतम न्यायालय इस नए अस्त्र का प्रयोग केवल निर्धन एवं असहाय नागरिकों के मूल अधिकारों के प्रवर्तित कराने के लिए ही नही करेंगे वरन पूरे समाज को अपराधविहीन और अनुशासित समाज में परिवर्तित करने में करेगा |

आज़ादी के बाद से आपातकाल के बीच में कुछ ऐसे भी निर्णय आये जिसमे विधिक प्रावधानों का निर्वचन करते हुए न्यायालय अपने सीमाओं से बाहर जाकर न्याय प्रदान किया अर्थात कहीं न कहीं न्यायिक सक्रियता का सन्देश उस समय कुछ निर्णय में मिलते रहें |जैसे – **खड्ग सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य A.I.R.1963 S.C. 27** पुलिस द्वारा अपीलार्थी को आधी रात में या कभी भी परेशान करने को माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने नियमो के विरुद्ध माना और दैहिक स्वन्त्रंता के संकुचित अर्थ को विस्तृत रूप में माना लेकिन फिर भी इस निर्णय को सर्वमान्य मत नही मिला |

6. वर्तमान में न्यायिक सक्रियता का विकास :- मेनका गाँधी बनाम भारत संघ A.I.R. 1978 S.C.597 मामले में माननीय न्यायालय ने दैहिक स्वन्त्रंता का विस्तृत अर्थ लिया और कहा कि इसमें शामिल स्वतंत्रता अनु. 19 से आगे हैं यह स्वतंत्रता अनु. 19 के अतिरिक्त हैं अनु. 21 में शामिल विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया का तात्पर्य विधि की सम्यक प्रक्रिया का पालन होना चाहिए जिसका तात्पर्य नैसर्गिक न्याय के नियमो का पालन होना चाहिए अर्थात विधि ऋजु, उचित, न्यायपूर्ण होना चाहिए |

यह वह निर्णय हैं जिसके बाद न्यायिक सक्रियता और जनहित याचिका का बड़े पैमान पर विकास हुआ और इन्ही दोनों अस्त्रों के माध्यम से न्यायालय आज कोई ऐसा क्षेत्र नही जहाँ वहां अपना न्याय नही प्रदान कर सकता हैं इनके वजह से आज संविधान का भाग 3 जो मूल अधिकार प्रदान करता हैं काफी विस्तृत हो गया हैं जैसे –

1. परमानन्द कटारा का मामला चिकित्सा सहायता पाने का अधिकार सभी व्यक्ति का मूल अधिकार हैं यह अनु.21 में ही शामिल हैं |
2. मोहिनी जैन शिक्षा पाने का अधिकार सभी का मूल अधिकार हैं |
3. पी रतिनम का मामला आत्महत्या का अधिकार मूल अधिकार नही हैं |
4. सुनील बत्रा का मामला शीघ्र विचारण का अधिकार मूल अधिकार |
5. मेनका गाँधी का मामला विदेश जाने का अधिकार मूल अधिकार |
6. ओलेगा टेलिस का मामला आजीविका पाने अधिकार मूल अधिकार हैं |
7. पी.यू.सी.एल. का मामला एकान्तता का अधिकार मूल अधिकार हैं |

ऐसे कई मामले आज हमें देखने को मिलते हैं जहाँ पर अन्याय होते देख माननीय न्यायालय न्याय प्रदान करने के लिए अग्रसर हो जाता हैं |

7. सुझाव:-

वर्तमान समय में न्यायालय की इन्ही शक्तियों की वजह से जनता का न्यायालयों पर पूर्ण विश्वास बना हुआ हैं | आज के समय में जब चारो तरफ मारा - मारी, लड़ाई - झगडे, भ्रष्टाचार, कर्तव्यहीनता व्याप्त हैं तो न्यायालय को इसी प्रकार की शक्ति चाहिए ताकि लोगों को न्याय मिल सके व संविधान की भावनाओं को कायम रखा जा सके | लेकिन ये भ्रष्टाचार, कर्तव्यहीनता, जैसे संलिप्ताताओं से न्यायालय भी अछुता नही रहा हैं फिर भी अन्य संवैधानिक संस्थाओं की तुलना में न्यायालय की भूमिका सर्वोच्च या साफ सुथरी नजर आती हैं | न्यायालय को न्यायिक सक्रियता अपनाते समय न्यायिक अतिसक्रियता का भी ध्यान रखना चाहिए | क्योकि न्यायिक सक्रियता जहाँ लोगों के लिए वरदान हैं वहीँ न्यायिक अतिसक्रियता लोगों के लिए अभिशाप हैं |

8. निष्कर्ष:-

इस प्रकार हम यह कह सकते हैं जहाँ पहले न्यायालय शाब्दिक निर्वचन कर अपने न्यायिक कर्तव्यों का पालन करते रहें वही अब वे न्याय प्रदान करने के लिए अपने निर्वचन के नियमों में तथ्य एवं परिस्थति के अनुसार बदलते रहते हैं | जहाँ शाब्दिक निर्वचन की जरुरत हैं वहां वे वैसा ही निर्वचन करते हैं ,जहां गोल्डन निर्वचन की जरुरत हैं वहां वह गोल्डन निर्वचन करते हैं, और संविधान की भावनाओं के अनुरूप अपने कर्तव्यों को करते हुए न्याय प्रदान करते हैं |

सन्दर्भ ग्रंथ सूची:-

1. जय नारायण, पाण्डेय,(2022) भारत का संविधान,सेंट्रल लॉ एजेंसी,इलाहाबाद, |
2. सी.के. टकवानी, (2021-22) भारत की संवैधानिक विधि, व्हाईटस एंड कंपनी, न्यू दिल्ली, 3 वा संस्करण |
3. एम.पी. जैन,(2018) भारतीय संवैधानिक विधि, लेक्सिस नेक्सिस, नागपुर, 8 वा संस्करण |
4. वी.एन. शुक्ला,(2018) भारत की संवैधानिक विधि, ई.बी.सी. लखनऊ, 13 संस्करण |
5. सी.पी. अरोरा,(2021) भारत का संविधान, यूनिवर्सल लॉ पब्लिशर्स, न्यू दिल्ली, 6th संस्करण |